विषयवस्तु

[**धारा 3 (1) (आर) [पूर्व में एस 3 (1) (एक्स)] 3**](#_1fob9te)

[हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य। (2020) 10 एससीसी 710 3](#_3znysh7)

केवल व्यक्ति का अपमान अपराध नहीं है जब तक कि यह उसके अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से संबंधित होने के कारण न हो।

[सुश्री गायत्री @ पूर्णा सिंह](#_tyjcwt) [बनाम](#_3znysh7) [राज्य और अन्य। (2017) एससीसी ऑनलाइन डेल 8942) 5](#_tyjcwt)

फेसबुक पर पोस्ट की गई टिप्पणियां धारा 3 (1) (आर) के तहत "लोक दृष्टि" का गठन करती हैं, अगर यह दिखाया जा सकता है कि जनता के सदस्यों ने पोस्ट देखी है।

[अरुमुगम सर्वई बनाम तमिलनाडु राज्य (2011) 6 एससीसी 405 8](#_1t3h5sf)

अपमानजनक अर्थों में जाति के नाम का उपयोग करना एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध है।

[दया भटनागर एवं अन्य](#_4d34og8) [बनाम](#_3znysh7) [राज्य मनु/डीई/0085/2004 10](#_4d34og8)

अधिनियम की धारा 3 (1) (x) में "लोक दृष्टि" में शिकायतकर्ता के साथ किसी भी प्रकार का घनिष्ठ संबंध या संबंध रखने वाले व्यक्ति शामिल नहीं हैं।

[**धारा 3(2)(v) 13**](#_17dp8vu)

[अशर्फी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2018) 1 एससीसी 742 13](#_3rdcrjn)

2016 से पहले की धारा 3(2)(v) में अपराध तब माना जाएगा, यदि बलात्कार इस आधार पर किया जाए कि पीड़िता अनुसूचित जाति की थी। इसका ज्ञान मात्र होना 2016 के बाद लागू होता है।

[**धारा 15A 15**](#_lnxbz9)

[हरिराम भांभी](#_35nkun2) [बनाम](#_3znysh7) [सत्यनारायण और एन.आर. (2021 की आपराधिक अपील संख्या 1278) 15](#_35nkun2)

आरोपी के खिलाफ अदालती कार्यवाही में धारा 15 ए के तहत पीड़िता को नोटिस अनिवार्य है।

[**धारा 14 17**](#_44sinio)

[शांताबेन भूराभाई भूरिया बनाम आनंद अथाभाई चौधरी (2021 की आपराधिक अपील संख्या 967) 17](#_2jxsxqh)

एससी/एसटी अधिनियम के तहत कार्यवाही केवल इसलिए रद्द नहीं हो सकती क्योंकि अधिनियम की धारा 14 के तहत विशेष अदालत के विपरीत मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया था।

[**धारा 18 और 18A**](#_z337ya) **18**

[भारत संघ](#_3j2qqm3) [बनाम](#_3znysh7) [महाराष्ट्र राज्य (2020) 4 एससीसी 761](#_3j2qqm3) 18

अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार करने से पूर्व प्रारंभिक जांच और नियुक्त प्राधिकारी के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है।

[पृथ्वी राज चौहान](#_1y810tw) [बनाम](#_3znysh7) [भारत संघ और अन्य। (2020) 4 एससीसी 727](#_1y810tw) 20

एससी/एसटी एक्ट की धारा 18ए संवैधानिक रूप से मान्य है

**अन्य****22**

[केरल राज्य](#_1ci93xb) [बनाम](#_3znysh7) [चंद्रमोहन (2004) 3 एससीसी 429](#_1ci93xb) 22

एक व्यक्ति धर्मांतरण के कारण अपने जनजाति का सदस्य होना बंद नहीं करता है।

[(v)](#_2bn6wsx) आशाबाई मछींद्र अधागले [महाराष्ट्र राज्य और अन्य। (2009) 3 एससीसी 789](#_2bn6wsx) 24

अधिनियम की धारा 3 (1) (xi) के तहत अपराध बनाने के लिए प्राथमिकी में आरोपी की जाति का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

[(ii)](#_qsh70q) लित मानवाधिकारों पर राष्ट्रीय अभियान बनाम भारत संघ और अन्य[। (2017) 2 एससीसी 432](#_qsh70q) 27

[मध्य प्रदेश राज्य बनाम बब्बू राठौर और अन्य। (2020 की आपराधिक अपील संख्या 123)](#_1pxezwc) 29

यदि दोनों के अंतर्गत अपराध शामिल हैं तो सक्षम अधिकारी द्वारा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अपराधों की जांच न करने के कारण आईपीसी अपराधों की जांच को रद्द नहीं किया जा सकता है।

# धारा 3 (1) (आर) [पूर्व में एस 3 (1) (एक्स)]

## हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य। (2020) 10 एससीसी 710

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

शिकायतकर्ता-प्रतिवादी, अनुसूचित जाति की सदस्या ने आरोप लगाया कि चार उच्च जाति के पुरुषों ने उसके निर्माणाधीन घर में प्रवेश किया और उसे, उसके पति और श्रमिकों को अपशब्द कहे। उसने यह भी बताया कि उसे इन लोगों ने जान से मारने की धमकी दी । उसने आरोप लगाया कि वे घर के विनिर्माण के लिए रखा सामान भी ले गए।

आईपीसी की धारा 504, 506 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3 (1) (एक्स) [अब धारा 3 (1) (आर)] के तहत अपराधों का प्रकटीकरण करते हुए एक आरोप पत्र दायर किया गया था , और उसी का संज्ञान लिया गया।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

मामले का संज्ञान लेने वाले ट्रायल कोर्ट के आदेश और आरोप पत्र को अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र को रद्द करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा याचिका खारिज कर दी गई। इसलिए, अपीलकर्ता ने इस याचिका को सर्वोच्च न्यायलय के समक्ष प्रस्तुत किया।

**समस्याएं:**

1. क्या अपीलकर्ता का कृत्य धारा 3 (1) (आर) के तहत "लोक दृष्टि में किसी स्थान" में था?
2. क्या धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध के लिए आशय/ इरादा आवश्यक है?

**नियम:**

अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) को 2016 में संशोधन द्वारा धारा 3(1)(आर) से बदल दिया गया था। धारा 3(1)(r) अपमान या धमकी के लिए दंड से संबंधित है और कहती है:

"जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होते हुए, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अवमानित करने के आशय से लोक दृष्टि में आने वाले किसी स्थान पर अपमानित या अभित्रस्त करेगा, वह जुर्माना सहित कारावास, जिसकी अवधि छः मास से कम नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक हो सकेगी, से दंडनीय होगा।”

**विश्लेषण:**

न्यायालय ने कहा कि अधिनियम का उद्देश्य निचली जातियों से संबंधित होने के कारण उन जातियों के खिलाफ, उच्च जातियों के सदस्यों के कृत्यों को दंडित करना है।

इसके दो तत्व हैं: 1) जानबूझकर किया गया अपमान और

2) लोक दृष्टि में किसी स्थान पर।

पिछले मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि किसी जगह को लोक दृष्टि में तब माना जा सकता है, यदि जनता का कोई सदस्य इसे देखने के लिए मौजूद है (दोस्तों और रिश्तेदारों को छोड़कर)। इस प्रकार, किसी इमारत या घर की तरह, कोई निजी स्थान भी लोक दृष्टि के भीतर हो सकता है। इस मामले में, चूंकि यह घटना शिकायतकर्ता-प्रतिवादी के अपने घर की चार दीवारों के भीतर हुई थी, जिसमें जनता का कोई सदस्य मौजूद नहीं था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि यह कृत्य लोक दृष्टि में किसी जगह पर किया गया था।

इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति का अपमान या धमकी, अधिनियम के तहत अपराध नहीं होगी, जब तक कि इस तरह का अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित होने के कारण, पीड़ित को न दी जाए। वर्तमान मामला दोनों पक्षों द्वारा भूमि पर अधिकारों के दावे से संबंधित था और यह अनादर, अपमान या उत्पीड़न के कारण नहीं है। चूंकि प्रत्येक नागरिक को कानूनी उपायों का उपयोग करने का अधिकार है, इसलिए दोनों पक्षों के कृत्य में कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ऐसे अधिकारों का लाभ उठाना शामिल था। न्यायालय ने कहा कि कृत्य इस कारण नहीं किया गया कि प्रतिवादी अनुसूचित जाति से संबंधित है। इसलिए, पहले घटक को संतुष्ट नहीं किया जा सका।

**निष्कर्ष:**

अदालत ने अपील की अनुमति दी और पाया कि वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध नहीं बनता है। इसलिए, न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आरोप पत्र को रद्द कर दिया।

## सुश्री गायत्री @ पूर्णा सिंह बनाम राज्य और अन्य। (2017) एससीसी ऑनलाइन डेल 8942)

(दिल्ली उच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

यह मामला अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर एक रिट याचिका से संबंधित है। याचिकाकर्ता और शिकायतकर्ता देवरानी-जेठानी हैं और उनकी शादी दो भाइयों से हुई थी। शिकायत में याचिकाकर्ता के खिलाफ फेसबुक पर 'धोबी' समुदाय का मजाक उड़ाते हुए जातिवादी टिप्पणी पोस्ट करके, शिकायतकर्ता को परेशान करने और प्रताड़ित करने का आरोप लगाया गया था। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर शिकायतकर्ता को ब्लॉक कर दिया था ताकि वह इन पोस्ट को न देख सके।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

याचिकाकर्ता ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें एफआईआर और उससे उत्पन्न कार्यवाही को रद्द करने की मांग की।

**समस्या:**

क्या फेसबुक पर टिप्पणी पोस्ट करना, धारा 3 (1) (आर) के तहत "लोक दृष्टि" है? क्या गोपनीयता सेटिंग्स को "सार्वजनिक" से "निजी" में बदलना इसे बदल सकता है?

**नियम:**

(i) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम:

* धारा 3(1)(x) [अब धारा 3(1)(r)] अपमान के लिए दंड से संबंधित है और कहती है:

जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होते हुए, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अवमानित करने के आशय से लोक दृष्टि में आने वाले किसी स्थान पर अपमानित या अभित्रस्त करेगा, वह जुर्माना सहित कारावास से, जिसकी अवधि छः मास से कम नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक हो सकेगी, से दंडनीय होगा।”

**विश्लेषण:**

अदालत ने दोनों पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों पर चर्चा शुरू की। याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि एफआईआर के पढ़ने से अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत अपराध होने का पता नहीं चलता है। सबसे पहले याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि संबंधित प्रावधान के तहत, अपराध तब माना जाएगा, जब आरोपी ने जानबूझकर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से अपमान किया हो और यह कि एक 'सदस्य' किसी विशेष सदस्य को संदर्भित करता है न कि सामान्यीकृत समुदाय को। यह बताया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए पोस्ट बड़े पैमाने पर महिला 'धोबन' समुदाय के लिए निर्देशित थे, न कि विशेष रूप से शिकायतकर्ता पर। इस तर्क को साबित करने के लिए याचिकाकर्ता ने यह भी बताया कि फेसबुक पोस्ट शिकायतकर्ता को सीधे संदर्भित नहीं कर सकते क्योंकि वे उसके लिए सुलभ नहीं थे और उसे उन्हें पढ़ने से ब्लॉक कर दिया गया था। इसलिए पोस्ट से अनुसूचित जाति के सदस्य का अपमान करने के इरादे का पता नहीं चलता।

दूसरा तर्क दिया गया कि धारा 3 (1) (एक्स) के लिए यह भी आवश्यक है कि अपमान "लोक दृष्टि में किसी स्थान पर" हो और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए, यह दावा किया जाना चाहिए कि पोस्ट को जनता के सदस्य द्वारा पढ़ा गया हो। इसलिए, इस तथ्य के बावजूद कि गोपनीयता सेटिंग 'सार्वजनिक' पर सेट की गई थी,याचिकाकर्ता की फेसबुक 'वॉल' को "लोक दृष्टि में कोई स्थान" नहीं कहा जा सकता क्योंकि जनता के किसी भी सदस्य ने इसे पढ़ने का दावा नहीं किया था।

इसके जवाब में, शिकायतकर्ता ने तर्क दिया कि इस चरण में, जिसके दौरान जांच चल रही थी और आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, आरोपों की सत्यता की जांच अदालत द्वारा नहीं की जानी चाहिए और केवल प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का अस्तित्व साबित किया जाना चाहिए। सबसे पहले, यह दावा किया गया कि संबंधित पोस्ट प्रतिवादी की ओर इशारा कर रहे थे क्योंकि वह 'धोबी' जाति से थी, याचिकाकर्ता की भाभी थी और उनके एक-दूसरे के साथ कटु संबंध थे, जिसके कारण उसने 'धोबी' समुदाय के खिलाफ दुर्भावना रखी। दूसरा, यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को पता था कि शिकायतकर्ता, याचिकाकर्ता के फेसबुक पेज को देखकर पोस्ट तक पहुंच सकती है और गोपनीयता सेटिंग्स को जानबूझकर 'सार्वजनिक' में बदला गया था ताकि जनता के सदस्य को टिप्पणियां पढ़ने में सक्षम बन सकें ।

धारा 3 (1) (एक्स) के तहत अपराध के लिए यह आवश्यक है कि (1) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जानबूझकर अपमान किया गया हो., जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, (2) अपमान सदस्य को,उनकी जाति की स्थिति के आधार पर अपमानित करने के आशय से किया गया हो, जिसका अर्थ है कि अभियुक्त को पीड़ित की जाति का ज्ञान हो, और (3) अपमान लोक दृष्टि में किसी भी स्थान पर किया गया हो।

*डीपी वत्स बनाम राज्य* में यह माना गया था कि 'एक सदस्य' किसी विशिष्ट व्यक्ति को संदर्भित करता है, जिसका अपमान किया गया हो। इसका अर्थ अनुसूचित जाति से संबंधित व्यक्तियों के समूह या भीड़ से नहीं हैं। इसे वर्तमान शिकायत पर लागू करते हुए, न्यायालय ने पाया कि शिकायत से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा की गई टिप्पणी विशेष रूप से शिकायतकर्ता के खिलाफ नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर समुदाय के खिलाफ निर्देशित थी। शिकायतकर्ता की जाति की स्थिति और उसके और याचिकाकर्ता के बीच व्यक्तिगत संबंध का ज्ञान, यह प्रदर्शित करने के लिए अपर्याप्त था कि पोस्ट उसे अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर किए गए थे।

"लोक दृष्टि" का अर्थ आवश्यक रूप से किसी सार्वजनिक स्थान से नहीं है। इसका अर्थ उस स्थान से होना चाहिए, जहां जनता मौजूद हो, जो स्वतंत्र हो और जिनकी मामले में शामिल किसी भी पक्ष में कोई दिलचस्पी नहीं हो। कोर्ट ने कहा कि किसी व्यक्ति के फेसबुक 'वॉल' पर लिखे हुए लेख को, गोपनीयता की स्थिति की परवाह किए बिना उनके मित्र लोगों द्वारा एक्सेस किया जा सकता है। इसलिए, शिकायतकर्ता की 'वॉल' पर पोस्ट किए गए अपमान को मित्र सदस्यों द्वारा पढ़ा जा सकता है और यह "लोक दृष्टि" का गठन करेगा। इसके अलावा, धारा 3 (1) (एक्स) में यह नहीं कहा गया है कि अपमान शिकायतकर्ता की उपस्थिति में किया गया हो, उनकी पीठ पीछे की गई टिप्पणी भी प्रावधान के तहत अपराध गठित करने के लिए योग्य होगी।

हालांकि, लोक दृष्टि प्रदर्शित करने के लिए, जनता के जिन सदस्यों की उपस्थिति में अपमानजनक टिप्पणी की गई थी, उन्हें भी शिकायत में दिखाया जाना चाहिए। इसे वर्तमान मामले में लागू करते हुए, न्यायालय ने कहा कि शिकायत इस पैमाने को संतुष्ट नहीं करती है क्योंकि शिकायत में यह दावा नहीं किया गया था कि टिप्पणी पूरी तरह से सार्वजनिक रूप से की गई थी या ऐसे कोई गवाह नहीं थे जिन्होंने पोस्ट पढ़े थे।

चूंकि अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत आवश्यक तीन तत्व संतुष्ट नहीं हो रहे थे, इसलिए एफआईआर ने अपराध के होने का प्रकटीकरण नहीं किया और इसे रद्द किया जा सका।

**निष्कर्ष:**

अदालत ने याचिका स्वीकार कर ली और अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ एफआईआर के साथ-साथ कार्यवाही को रद्द करने का आदेश दिया।

## अरुमुगम सर्वई बनाम तमिलनाडु राज्य (2011) 6 एससीसी 405

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

1.7.1999 को जल्लीकट्टू में बैल बांधने के तरीके के बारे में एक मंदिर उत्सव में अपीलकर्ता और दो शिकायतकर्ताओं के बीच बहस हुई थी। अपीलकर्ता अरुमुगम सर्वई ने पहले शिकायतकर्ता को 'पल्लन' कहकर और गाय के गोमांस का सेवन करने का आरोप लगाकर अपमानित किया। उसके बाद आरोपियों ने उस पर लाठी-डंडों से भी हमला किया, जिससे उसके बाएं कंधे पर गंभीर चोटें आईं। दूसरे शिकायतकर्ता ने पहले को बचाने के लिए हस्तक्षेप किया, लेकिन आरोपी ने उस पर भी लाठी से हमला किया और उसके सिर पर फ्रैक्चर हो गया। अभियुक्त सर्वई जाति से संबंधित है जो पिछड़ी जाति है, जबकि शिकायतकर्ता पल्लन जाति से हैं, जो तमिलनाडु में अनुसूचित जाति है।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

अपीलकर्ता ने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के खिलाफ, जिसमें अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, मदुरै के निर्णय को बरकरार रखा गया था, उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया ।

**समस्या:**

क्या अपमानजनक तरीके से जाति के नाम का उपयोग करना धारा 3 (1) (एक्स) [अब धारा 3 (1) (आर)] के तहत अपराध के लिए पर्याप्त है?

**नियम:**

(i) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम:

* धारा 3 (1) (एक्स) अपमान के लिए सजा से संबंधित है और जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होते हुए, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अवमानित करने के आशय से लोक दृष्टि में आने वाले किसी स्थान पर अपमानित या अभित्रस्त करेगा, वह जुर्माना सहित कारावास से, जिसकी अवधि छः मास से कम नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक हो सकेगी, से दंडनीय होगा।”

**विश्लेषण:**

अदालत ने दोनों पक्षों की सामाजिक पृष्ठभूमि का पता लगाया और कहा कि आरोपी 'सर्वई' जाति, एक पिछड़ी जाति से संबंधित था, और शिकायतकर्ता तमिलनाडु में अनुसूचित जाति 'पल्लन' जाति से था। यद्यपि 'पल्लन' विशेष रूप से एक जाति को दर्शाता है, किंतु इस शब्द का उपयोग अनुसूचित जाति के सदस्य का अपमान करने के आशय से अपमानजनक अर्थ में भी किया जाता है, इस प्रकार अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत अपराध का गठन किया गया । इसे वर्तमान मामले में लागू करते हुए, न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि 'पल्लापायल' शब्द के साथ गोमांस की खपत का संदर्भ, आरोपियों द्वारा पनीरसेल्वम का अपमान करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। इसलिए, यह अधिनियम के तहत एक अपराध का गठन करता है।

न्यायालय ने स्वर्ण सिंह और अन्य बनाम राज्य को संदर्भित करते हुए कहा कि, जहां 'चमार' शब्द को अपमान, अवमान और उपहास के शब्द के रूप में माना गया था क्योंकि इसका उपयोग किसी विशिष्ट जाति को दर्शाने के लिए नहीं बल्कि जानबूझकर उस व्यक्ति का अपमान करने के लिए किया गया था। इसलिए, अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) की व्याख्या करते हुए, यह कहा गया कि न्यायालय को 'चमार' शब्द के लोकप्रिय अर्थ को ध्यान में रखना चाहिए, जो उपयोग द्वारा अर्जित किया गया है न कि उसके व्युत्पत्ति संबंधी अर्थ को। जैसा कि उल्लिखित है, अपमान या अवमानित करने के इरादे से इन शब्दों का प्रयोग, उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें उनका उपयोग किया जाता है।

वर्तमान मामले में, घटना के संदर्भ में अपीलकर्ता द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्द को अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के अनुसार अपमानजनक माना गया था और अपमान मंदिर के उत्सव में अवमानित करने के इरादे से, लोक दृष्टि के दायरे में किया गया था। इसलिए, अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत आरोप सिद्ध होता है।

**निष्कर्ष:**

अदालत ने अपील को खारिज कर दिया और अपीलकर्ता को उत्तरदायी ठहराया।

## दया भटनागर एवं अन्य बनाम राज्य, मनु/डीई/0085/2004

(दिल्ली उच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

याचिकाकर्ता और शिकायतकर्ता पड़ोसी थे। उनके बीच कुछ विवाद के कारण दो क्रॉस केस दर्ज किए गए थे, एक एससी/एसटी पीओए अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत और दूसरा आईपीसी की धारा 354/34 के तहत। अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि दो अलग-अलग दिनों में, बाबू लाल और उनकी पत्नी मीना कुमारी को उनकी जाति के आधार पर अपमानित और अवमानित किया गया था।

अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि बाबू लाल ने पुलिस को एक रिपोर्ट दर्ज कराई कि जब वह पांच अन्य लोगों के साथ बगल के फ्लैट में बैठा था, तब श्रीमती वीणा दास, मधु श्रीवास्तव और प्रेम शंकर मदान वहां आए और बिना किसी कारण के उसे "चूड़ा चमार, बाबू लाल चूड़ा चमार" कहा। इस शिकायत पर बाबू लाल के साथ-साथ चार गवाहों के हस्ताक्षर थे। अगले दिन बाबू लाल की पत्नी श्रीमती मीना कुमारी ने एक अन्य रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें आरोप लगाया गया कि जब वह अपने बच्चों के साथ अपने फ्लैट पर मौजूद थीं, तभी 25-30 महिलाओं का एक समूह वहां आया और दरवाजा पीटते हुए कहा, "चूड़ी चमारी ,घर से बाहर आ जाओ, तुम हमारे स्टैंडर्ड के अनुरूप नहीं हो और तुम इस ब्लॉक में नहीं रह सकते"। उसे उसकी जाति के आधार पर अपमानित और अवमानित किया गया; जिसके वह अस्वस्थ हो गई और उसे दवा लेने के लिए डॉक्टर के पास जाना पड़ा।

याचिकाकर्ताओं का पक्ष यह था कि जब वे बाबू लाल से अवैतनिक मासिक सदस्यता लेने गए थे, तो वह अपने अंडरवियर में बाहर आए और महिलाओं के प्रति यौन संबंध बनाने के संकेत देते हुए आगे बढ़े। उन्होंने आगे तर्क दिया कि शिकायतकर्ता द्वारा रिपोर्ट में, धारा 3 (1) (आर) के लिए "लोक दृष्टि" का घटक पूरा होता है। याचिकाकर्ताओं ने एससी/एसटी पीओए के तहत एफआईआर को रद्द करने की मांग करते हुए याचिका दायर की थी।

**प्रक्रियात्मक इतिहास**

उच्च न्यायालय की खंडपीठ के बीच इस बात को लेकर मतभेद था कि क्या एससी/एसटी अत्याचार निवारण के अंतर्गत अपराध के तत्व पूरे होते हैं। एक न्यायाधीश का मानना था कि यद्यपि श्रीमती मीना कुमारी की रिपोर्ट में कोई सार्वजनिक व्यक्ति नहीं था, बाबू लाल की रिपोर्ट में सार्वजनिक व्यक्ति उपस्थित थे और इसलिए ट्रायल न्यायालय को ट्रायल जारी रखने के निदेश दिए गए। दूसरे न्यायाधीश के अनुसार बाबू लाल के साथ मौजूद व्यक्ति उनके मित्र थे और स्वतंत्र सदस्य नहीं थे कि उन्हें “लोक” कहा जाए । उपर्युक्त मतभेद पर मामला उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा गया।

**समस्या:**

क्या शिकायतकर्ता के साथ घनिष्ठ संबंध रखने वाले व्यक्तियों की उपस्थिति धारा 3 (1) (आर) के तहत "लोक दृष्टि" है?

**नियम:**

(i) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम:

* धारा 3 (1) (एक्स) अपमान के लिए सजा से संबंधित है और कहती है:

जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होते हुए, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अवमानित करने के आशय से लोक दृष्टि में आने वाले किसी स्थान पर अपमानित या अभित्रस्त करेगा, वह जुर्माना सहित कारावास से, जिसकी अवधि छः मास से कम नहीं होगी, किंतु जो एक वर्ष तक हो सकेगी, से दंडनीय होगा।”

**विश्लेषण:**

इस मामले में, न्यायालय ने धारा 3 (1) (एक्स) में प्रयोग होने वाले पद "लोक दृष्टि" के अर्थ पर विचार किया। न्यायालय ने कहा कि कानून में "लोक दृष्टि" में किसी भी स्थान पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य के "अपमान", "अभित्रस्त" और "अवमानना" के अपराध के लिए एक आवश्यक घटक के रूप में ‘आशय’ की आवश्यकता है। अधिनियम के तहत अपराध काफी गंभीर हैं और कठोर दंड प्रदान करते हैं। जितना गंभीर अपराध होता है, उतना मज़बूत सबूत होना चाहिए। अपराध के लिए ऐसी व्याख्या को अपनाया जाना चाहिए, जो अनिष्ट का परिहार करती हो और अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करती हो। इसे ध्यान में रखते हुए, अधिनियम के लक्ष्यों और उद्देश्यों को देखते हुए, अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) में पद "लोक दृष्टि" का अर्थ इस रूप में लगाया जाना चाहिए कि उपस्थित सार्वजनिक व्यक्ति, (चाहे वह कितनी भी कम संख्या में हो), स्वतंत्र और निष्पक्ष होना चाहिए और उसका किसी भी पक्ष की ओर झुकाव नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिकायतकर्ता के साथ किसी भी प्रकार का घनिष्ठ संबंध या संबंध रखने वाले व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से इस श्रेणी से बाहर रखा जाएगा।

यह माना गया कि अधिनियम की धारा 3 (एल) (एक्स) में प्रयोग होने वाले पद "लोक दृष्टि" का अर्थ उस दृष्टि से है जिसमें स्थान/इलाके/गांव के लोगों के समूह शामिल हैं, जो निजी नहीं हैं और अजनबी के समान हैं और किसी करीबी रिश्ते या किसी व्यवसाय, वाणिज्यिक या कोई अन्य निहित स्वार्थ के माध्यम से शिकायतकर्ता के साथ जुड़े नहीं हैं, और जो किसी भी तरह से उसके साथ भाग लेने वाले सदस्य नहीं हैं।

यह भी कहा गया कि एक गवाह को केवल इसलिए "रुचिपूर्ण", "पक्षपातपूर्ण (biased)" या "असमदर्शी (Partial)" नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसे काउंटर एफआईआर में आरोपी बनाया गया है, जब तक कि उपस्थित परिस्थितियां, प्रथम दृष्टया ऐसा कोई संकेत न दें, जैसे एक ही समय पर क्रॉस एफ़आईआर गर्ज करना, जहां दोनों पक्ष घायल हों या जहां झूठे फंसाने के लिए पिछली दुश्मनी या अन्य दृढ़ मकसद हो। अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत शिकायतकर्ता या अपराध के गवाहों के खिलाफ देर से/ बाद में मामला दर्ज करना पर्याप्त नहीं होगा। अन्यथा, जब भी अधिनियम की धारा 3 (1) (एक्स) के तहत कोई अपराध किए जाने का आरोप लगाया जाएगा, तो अभियुक्त हमेशा शिकायतकर्ता या गवाहों के खिलाफ किसी भी तरह से दांव पेंच लगाकर काउंटर एफआईआर दर्ज कराने के लिए उत्सुक रहेगा, ताकि उसके खिलाफ पहले ही दर्ज कराई गई एफआईआर को विफल किया जा सके। कानून में इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती।

प्रथम दृष्टया यह दिखाने के लिए भी कुछ भी नहीं था कि शिकायत में उल्लिखित चार गवाहों का शिकायतकर्ता के साथ कोई व्यवसाय, या वाणिज्यिक, या कोई अन्य संबंध था, या उनका अन्य निहित स्वार्थ था, ताकि उन्हें अभिव्यक्ति "सार्वजनिक दृष्टिकोण" के अर्थ के भीतर स्वतंत्र व्यक्ति होने की स्थिति से वंचित किया जा सके। केवल इस तथ्य से कि गवाह शिकायतकर्ता के घर पर मौजूद थे जब आपत्तिजनक शब्दों का कथित रूप से इस्तेमाल किया गया था, अपने आप में, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वे शिकायतकर्ता के सहयोगी थे या स्वतंत्र व्यक्ति नहीं थे। ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है,

**निष्कर्ष:**

एफआईआर को रद्द करने की याचिका खारिज होने योग्य थी।

# 

# धारा 3(2)(v)

## अशर्फी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2018) 1 एससीसी 742

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य और प्रक्रियात्मक इतिहास:**

अपीलकर्ता अशर्फी और उदय भान ने पीड़िता के घर में घुसकर बलात्कार किया। पड़ोसियों ने शोर मचाया जिसके बाद वे भाग गए। 1996 में एफआईआर दर्ज की गई थी।

ट्रायल कोर्ट ने भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) के तहत सभी आरोपों की पुष्टि की और अपीलकर्ता को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3 (2) (v) के तहत 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई। इसके बाद अपीलकर्ता ने अलाहाबाद उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जहां ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषसिद्धि की पुष्टि की गइ। वर्तमान अपील यह सुनिश्चित करने के लिए दायर की गई थी कि निचली अदालतों द्वारा पारित दोषसिद्धि आदेश सुनवाई योग्य था या नहीं।

ट्रायल कोर्ट ने आईपीसी और अधिनियम दोनों की प्रासंगिक धाराओं के तहत आरोपों की पुष्टि की और तदनुसार आरोपी को दोषी ठहराया। सजा से असंतुष्ट आरोपी ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। दोनों अदालतों का बलात्कार के आरोपों के संबंधी निष्कर्ष समवर्ती था। अपील पर मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लाया गया था।

**समस्या:**

2016 के संशोधन से पहले धारा 3 (2) (v) के मामले के लिए, क्या कानून के लिए केवल पीड़ित का अनुसूचित जाति से होने के ज्ञान का आवश्यक था या इसके साथ मंशा की भी आवश्यकता थी?

**नियम:**

(ii) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

* अधिनियम की धारा 3 (2) (v) (2016 संशोधन से पहले) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति के खिलाफ अपराध के लिए सजा से संबंधित है और कहती है:

जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन इस आधार पर कोई अपराध करेगा कि वह व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगा।

* नोट: 2016 का संशोधन अधिनियम 1 पीड़ित की जाति की स्थिति के ज्ञान पर जोर देता है और कहता है:

"जो कोई भी, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, किसी व्यक्ति के खिलाफ़ यह जानते हुए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन कोई अपराध करेगा कि व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध करेगा, वह आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगा।

हालांकि, चूंकि इस मामले में अपराध संशोधन से पहले हुआ था, इसलिए अदालत ने इस मामले को धारा 3 (2) (वी) के पूर्व-संशोधन संस्करण के आधार पर तय किया।

**विश्लेषण:**

सबूतों से यह नहीं पता चलता कि पीड़िता के साथ विशेष रूप से इस आधार पर बलात्कार किया गया था कि वह अनुसूचित जाति से संबंधित थी। 2016 के संशोधन के बाद के मामले के लिए, अपमानजनक कृत्य करने की स्थिति में केवल यह ज्ञान होना कि एक महिला अनुसूचित जाति से संबंधित है, धारा 3 (2) (वी) के तहत अपराध माने जाने के लिए पर्याप्त है । हालांकि, 2016 के संशोधन से पहले के मामले के लिए, धारा 3 (2) (v) केवल तभी लागू होती है जब यह साबित हो जाता है कि बलात्कार इस आधार पर किया गया था कि पीड़िता अनुसूचित जाति से संबंधित थी। चूंकि इसका सबूत मौजूद नहीं था, इसलिए कोर्ट ने माना कि धारा 3 (2) (वी) लागू नहीं होगी।

**निष्कर्ष:**

अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और उसके तहत आजीवन कारावास की सजा को रद्द कर दिया गया। चूंकि आरोपी पहले ही धारा 376 (2) (जी) के तहत 10 साल से अधिक की कैद काट चुका था, इसलिए अदालत ने उसकी रिहाई का आदेश दिया।

# धारा 15A

## हरिराम भांभी बनाम सत्यनारायण और अन्य (2021 की आपराधिक अपील संख्या 1278)

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

अपीलकर्ता ने एक रिपोर्ट दर्ज की जिसमें कहा गया था कि उसके छोटे भाई को कथित तौर पर एक वाहन से बाहर फेंक दिया गया था और चूंकि मृतक अनुसूचित जाति का था, इसलिए एससी/एसटी (पीओए) अधिनियम, 1989 के तहत दंडनीय अपराध भी इसमें लगाए गए। प्रतिवादी ने जमानत देने के लिए विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी (अत्याचार निवारण मामले) अजमेर के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसे खारिज कर दिया गया। प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय में अपील की, जिसमं उसे जमानत पर रिहा करने के आदेश दिए गए। एससी/एसटी अधिनियम की धारा 15 ए के तहत अपीलकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था, अपीलकर्ता ने जमानत रद्द करने के लिए सीआरपीसी की धारा 439 (2) के तहत सर्वोच्च न्यायालय का रुख किया।

**समस्या:**

क्या एससी/एसटी अधिनियम की धारा 15 ए (3) के तहत अपीलकर्ता को नोटिस दिए बिना प्रतिवादी की जमानत रद्द करना संभव है?

**नियम:**

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 2016:

* धारा 15A (3) पीड़ितों और गवाहों के अधिकारों से संबंधित है:

"पीड़ित या उसके आश्रित को, किसी भी जमानत कार्यवाही सहित किसी भी अदालती कार्यवाही की उचित, सटीक और समय पर सूचना देने का अधिकार होगा और विशेष लोक अभियोजक या राज्य सरकार, पीड़ित को इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही के बारे में सूचित करेगी।

* धारा 15A (5) पीड़ितों और गवाहों के अधिकारों से संबंधित है:

"एक पीड़ित या उसके आश्रित, इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही में जमानत, आरोपमुक्ति, रिहाई, पैरोल, दोषसिद्धि या किसी अभियुक्त की सजा या किसी भी संबंधित कार्यवाही या तर्कों के संबंध में सुनवाई के हकदार होंगे और दोषसिद्धि, बरी करने या सजा पर लिखित दलील दायर करेंगे।

**विश्लेषण:**

न्यायालय ने दोहराया कि एससी/एसटी अधिनियम अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संवैधानिक अधिकारों को प्राप्त करने के हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए अधिनियमित किया गया था। 'पीड़ितों और गवाहों के अधिकार' शीर्षक वाले अध्याय IV-A के तहत आने वाली धारा 15A को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 के माध्यम से पेश किया गया था। यह अध्याय पीड़ितों, उनके आश्रितों और गवाहों को किसी भी प्रकार की धमकी, जबरदस्ती या प्रलोभन या हिंसा या हिंसा की धमकी से बचाने के लिए आवश्यक व्यवस्था करने के लिए राज्य पर कुछ कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को लागू करने के लिए जोड़ा गया था।

एससी/एसटी अधिनियम की धारा 15ए में ऐसे महत्वपूर्ण प्रावधान हैं जो जाति आधारित अत्याचारों के पीड़ितों और गवाहों के अधिकारों की रक्षा करते हैं। धारा 15A की उप-धारा (3) पीड़ित या उनके आश्रितों को जमानती कार्यवाही सहित किसी भी अदालती कार्यवाही की उचित, सटीक और समय पर सूचना देने का वैधानिक अधिकार प्रदान करती है। धारा 15 क की उपधारा (5) पीड़ित या आश्रित को सुने जाने के अधिकार का प्रवधान करती है। नोटिस जारी करने की आवश्यकता, सुनवाई के अधिकार को सुविधाजनक बनाती है। धारा 15 ए (3) के तहत पीड़ित या आश्रित को अदालत की कार्यवाही की सूचना जारी करने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें सुनवाई का अवसर प्रदान किया जा सके। न्यायालय ने यह भी दोहराया कि पीड़ितों या उनके आश्रितों को दिया गया नोटिस प्रथमिक रूप से और जल्द से जल्द दिया जाना चाहिए। यदि अनुचित देरी होती है, तो पीड़ित या उनके आश्रित, मामले में हुई प्रगति से अनजान रहेंगे और यह अभियुक्त के बचाव का प्रभावी ढंग से विरोध करने के उनके अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

**निष्कर्ष:**

अपील की अनुमति दी गई और राजस्थान उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया।

# धारा 14

## शांताबेन भूराभाई भूरिया बनाम आनंद अथाभाई चौधरी (2021 की आपराधिक अपील संख्या 967)

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

तीन पुलिस अधिकारी शिकायतकर्ता के गांव में आए और उसे घायल कर दिया, जाति आधारित गालियां दीं, उसके बेटे को पीटा, उसके पति को ले गए, घर में तोड़फोड़ की और चोट पहुंचाने की धमकी दी। शिकायतकर्ता ने कोशिश की लेकिन वह अपनी औपचारिक शिकायत दर्ज कराने में असमर्थ रही और इसलिए उसने मजिस्ट्रेट के पास शिकायत दर्ज कराई। मजिस्ट्रेट ने कथित अपराधों का संज्ञान लेते हुए एक आदेश जारी किया। आरोपी ने उच्च न्यायालय में अपील करते हुए तर्क दिया कि मजिस्ट्रेट एक विशेष अदालत नहीं है और इसलिए एससी/एसटी अधिनियम के तहत मामले का संज्ञान लेने के लिए सक्षम नहीं है।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

उच्च न्यायालय ने आईपीसी की विभिन्न धाराओं और अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के तहत पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया। शिकायतकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की।

**समस्या:**

ऐसे मामले में जहां मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जाता है और उसके बाद मामला विशेष अदालत को सौंप दिया जाता है, क्या अत्याचार निवारण अधिनियम की धारा 14 के दूसरे परंतुक पर विचार करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है?

**नियम:**

संशोधन के बाद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14 के परंतुक में निम्नलिखित का प्रावधान हैः

"त्वरित सुनवाई के लिए प्रदान करने के उद्देश्य से, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक जिलों के लिए एक विशेष न्यायालय की स्थापना करेगी:

परंतु यह और कि इस प्रकार स्थापित या विनिर्दिष्ट न्यायालयों को इस अधिनियम के अधीन अपराधों का प्रत्यक्ष रूप से संज्ञान लेने की शक्ति होगी।

**विश्लेषण:**

अत्याचार निवारण अधिनियम की धारा 14 का दूसरा परंतुक विशेष न्यायालय को अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करता है। इस शक्ति का उद्देश्य त्वरित ट्रायल प्रदान करना है। धारा 14 में परंतुक के समावेश के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि यह परंतुक सीआरपीसी की धारा 193, 207, 209 के विरोध में है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह मजिस्ट्रेट के संज्ञान लेने और उसके बाद अधिनियम के तहत अपराधों के लिए मुकदमे के लिए विशेष अदालत में भेजने के अधिकार क्षेत्र को छीन लेता है। परन्तुक में यह नहीं कहा गया है कि *केवल* विशेष न्यायालय ही संज्ञान ले सकता है। न्यायालयों ने धारा में प्रयुक्त शब्दों का विश्लेषण किया और कहा कि यह स्पष्ट रूप से "केवल" को छोड़ देता है। यदि कानून का आशय एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार विशेष रूप से विशेष न्यायालय को देना होता, तो उसके शब्दों में यह स्पष्ट हो जाता।

न्यायालय ने कहा कि यह सलाह दी जाती है कि धारा 14 के तहत विशेष न्यायालय अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान ले। लेकिन केवल इस आधार पर कि अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान सीधे अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित विशेष न्यायालय द्वारा नहीं लिया गया, पूरी कार्यवाही को रद्द नहीं कहा जा सकता है। इस मामले में प्रतिवादी का तर्क विफल हो जाता है।

**निष्कर्ष:**

पीठ ने उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया।

# धारा 18 और 18A

## भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य (2020) 4 एससीसी 761

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

यह देखते हुए कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति संरक्षण अधिनियम के उपबंधों का बार-बार दुरुपयोग किया जा रहा है, डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम *महाराष्ट्र राज्य*  मामले में सर्वोच्च न्यायालय की 2 न्यायाधीशों की बेंच  *ने* इसके समाधान के लिए कई निदेश जारी करते हुए *निर्णय दिया*:

* किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी प्राधिकृत प्राधिकारी के अनुमोदन के बाद ही हो सकती है।
* गिरफ्तारी के कारणों की जांच मजिस्ट्रेट द्वारा की जानी चाहिए।
* मामला तुच्छ है या नहीं, यह पता लगाने के लिए डिप्टी एसपी द्वारा प्रारंभिक जांच की जानी चाहिए।
* अग्रिम जमानत पर कोई रोक नहीं होगी।

न्यायालय ने माना कि इस तरह का दुरुपयोग अनुच्छेद 21 के खिलाफ था। वर्तमान याचिका उक्त निर्णय की समीक्षा के लिए दायर की गई थी।

वर्तमान मामले में, सर्वोच्च न्यायालय की 3-न्यायाधीशों की पीठ ने *डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में पारित निर्णय की समीक्षा की।*

**समस्या:**

क्या डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम *महाराष्ट्र राज्य*  मामले में न्यायालय द्वारा जारी दिशा-निर्देश अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण के उद्देश्यों और प्रवधानों के विपरीत है?

**नियम:**

धारा 18, एससी/एसटीपीओए अधिनियम के तहत आरोपी द्वारा आवेदन करने पर अग्रिम जमानत के अपराध को बाहर करती है।

**विश्लेषण:**

न्यायालय ने उपर्युक्त दिशानिर्देशों को संशोधित करते हुए कहा कि वे भेदभाव को रोकने और एससी/एसटी की स्थिति में सुधार करने के, कानून के उद्देश्य के खिलाफ थे। यदि झूठी रिपोर्ट दर्ज की जाती है, तो इसका कारण व्यक्ति की जाति नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति है। यह मान लेना कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोग झूठे मामले दर्ज करने के लिए प्रवृत्त हैं, गरिमा के विरुद्ध है।

न्यायालय ने कहा कि एससी/एसटीपीओए मामलों के लिए एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने से पहले प्रारंभिक जांच करना आम बात है। न्यायालय ने इसे भेदभावपूर्ण प्रथा पाया, क्योंकि इससे एससी/एसटी व्यक्तियों द्वारा दर्ज की जा रही एफआईआर, प्रारंभिक जांच के बाद ही दर्ज की जा सकेगी। जबकि, उच्च जाति द्वारा एक रिपोर्ट तुरंत दर्ज की जाती है और सीआरपीसी के तहत तुरंत गिरफ्तारी की जा सकती है। यह पीओए और अनुच्छेद 15, 17 और 21 के तहत एससी/एसटी के लिए सुरक्षात्मक भेदभाव के विपरीत होगा। यह *ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार* में सर्वाच्च न्यायालय के फैसले के भी विपरीत होगा, जिसमें कहा गया था कि प्रारंभिक जांच केवल तभी की जानी चाहिए जब अधिकारी को लगता है कि एक संज्ञेय मामला बनाया जा सकता है। यदि कोई संज्ञेय अपराध किया जाता है, तो एफआईआर को पूर्ण रूप से दर्ज किया जाना चाहिए, और कोई प्रारंभिक जांच नहीं की जानी चाहिए।

न्यायालय ने यह भी कहा कि इस परिस्थिति में अदालत के पिछले फैसलों में कहा गया है कि जहां अधिनियम के तहत *प्रथम दृष्टया* मामला नहीं बनता है, अग्रिम जमानत पर रोक लागू नहीं होगी। इसे प्रावधान के दुरुपयोग के खिलाफ पर्याप्त सुरक्षा के रूप में देखा गया था। इसमें गिरफ्तारी करने में विलंब और अनुमोदन प्रदान करने में संभावित मनमानी शामिल है, जिसका उपयोग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों को नुकसान पहुंचाने के लिए अधिनियम का दुरुपयोग करने के लिए किया जा सकता है। यह भी नोट किया गया कि क्या प्रथम *दृष्टया* मामला बनता है और गिरफ्तारी की जा सकती है, यह निर्णय न्यायालय की जिम्मेदारी थी और नियुक्त प्राधिकारी की ओर से निर्देश, इसका वैधानिक आधार नहीं होगा।

अधिनियम के अंतर्गत सभी अपराध संज्ञेय हैं। किसी लोक सेवक को गिरफ्तार करने के लिए नियुक्त प्राधिकारी की अनुमति, सीआरपीसी या एससी/एसटी अधिनियम में वैधानिक रूप से परिकल्पित नहीं की गई। संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध के मामले में एफआईआर न करने की शक्ति किसी भी क़ानून में मौजूद नहीं है। आक्षेपित निर्णय में न्यायालय एक विधायी कार्य में अतिक्रमण कर रहा था। यह अव्यावहारिक भी होगा क्योंकि इसमें बहुत समय लगेगा, और गिरफ्तारी होने तक जांच पूरी नहीं हो सकेगी। यह नियुक्त प्राधिकारी की शक्तियों के भीतर नहीं है कि वह मामले की बारीकियों को देखे और फिर यह तय करे कि गिरफ्तारी की जानी चाहिए या नहीं। यह एससी/एसटीपीओए को पुलिस से संपर्क करने में हतोत्साहित करने से एससी/एसटीपीओए के उद्देश्य को भी विफल करेगा।

**निष्कर्ष:**

न्यायालय ने डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम  *महाराष्ट्र राज्य* के मामले में जारी दिशा-निर्देशों को वापस ले लिया*।*

## पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य। (2020) 4 एससीसी 727

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक जनहित याचिका दायर की गई थी जिसमें याचिकाकर्ताओं ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 18 ए की संवैधानिक वैधता पर सवाल उठाया था। यह तर्क दिया गया था कि यह धारा *डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य में जारी निर्देशों को रद्द करती है।* उक्त निर्णय में अनुच्छेद 21 के लागू होने के कारण, याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि इस तरह का संशोधन मनमाना, अन्यायपूर्ण, तर्कहीन और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन था; अग्रिम जमानत के अधिकार पर कोई रोक संभव नहीं थी।

**समस्या:**

क्या अधिनियम की धारा 18A मनमानी, अन्यायपूर्ण, तर्कहीन और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है?

**नियम:**

* धारा 18ए, एससी/एसटीपीओए, 1989 में कहा गया कि एफआईआर के लिए प्रारंभिक जांच की आवश्यकता नहीं होगी, गिरफ्तारी के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी और किसी भी न्यायालय के फैसले के बावजूद, सीआरपीसी की धारा 438, अग्रिम जमानत के संबंध में लागू नहीं होगी।
* भारत का संविधान, अनुच्छेद 21, "किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

**विश्लेषण:**

न्यायालय ने भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य *में दिए गए अपने निर्णय को रकरार रखा, जिसमें डॉ. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र*  राज्य में जारी किए गए निर्देशों को अमान्य करार दिया गया था। इसने इस बात पर भी जोर दिया कि यदि *प्रथम दृष्टया* मामला नहीं बनता है, तो अग्रिम जमानत हो सकती है और धारा 18 और 18 ए लागू नहीं होगी। इसके अलावा, असाधारण मामलों में, एक न्यायालय दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

न्यायमूर्ति रवींद्र एस. भट ने अपने समवर्ती फैसले में उच्च न्यायालय के कर्तव्य को बताते हुए कहा कि वह गिरफ्तारी पूर्व जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय दो हितों को संतुलित करे और यह सुनिश्चित करे कि शक्ति का संयम से उपयोग किया जाए, ताकि अधिनियम के तहत अधिकार क्षेत्र को धारा 438 के तहत प्रयोग किए जाने वाले अधिकार क्षेत्र में परिवर्तित करने से बचा जा सके , जो सामान्य अपराधों के मामले में अग्रिम जमानत का प्रावधान करता है।

**निष्कर्ष:**

न्यायालय ने याचिका का निपटारा कर दिया और औपचारिक रूप से 2018 के संशोधन की संवैधानिकता को बरकरार रखा, जिसने अधिनियम में धारा 18A को शामिल किया था।

# अन्य

## केरल राज्य बनाम चंद्रमोहन (2004) 3 एससीसी 429

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

इस मामले में रामचंद्रन द्वारा प्रतिवादी चंद्रमोहन के खिलाफ की गई एक शिकायत शामिल है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि वह एलिजाबेथ पी. कोरा नाम की आठ वर्षीय लड़की को पटंबी सरकारी स्कूल में कक्षा में ले गया था, जिसका उद्देश्य उसका अपमानित करना और उसका शील भंग करना था। शिकायत भारतीय दंड संहिता की धारा 509 के तहत एक एफआईआर के रूप में दर्ज की गई थी और यह पता चलने पर कि पीड़िता के पिता माला आर्यन समुदाय से थे, जो केरल राज्य में अनुसूचित जनजाति है, जांच अधिकारी ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3 (1) (xi) के तहत एक और शिकायत दर्ज की।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 3 (1) (xi) के तहत प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को इस आधार पर रद्द कर दिया कि पीड़ित परिवार ने अनुसूचित जनजाति के सदस्य नहीं रहते हुए ईसाई धर्म अपना लिया था। केरल राज्य ने निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से अपील को प्राथमिकता दी।

**समस्या:**

क्या कोई व्यक्ति दूसरे धर्म में धर्मांतरण के बावजूद अनुसूचित जनजाति का सदस्य बना रहता है?

**नियम-+:**

(i) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

* धारा 3 (1) (xi) महिलाओं के खिलाफ हमले के लिए सजा से संबंधित है और निम्नलिखित बताती है:

जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए किसी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसका शील भंग करने के आशय से उस पर हमला करेगा या बल प्रयोग करेगा, वह कारावास से, जो छह मास से कम नहीं होगी किंतु जो पाँच वर्ष तक का हो सकेगी, और जुर्माने से दंडनीय होगा।

**विश्लेषण:**

व्यक्ति को जनजाति का सदस्य होने की शर्त को पूरा करना चाहिए और जनजाति का सदस्य बने रहना चाहिए। यदि बहुत समय पहले किसी दूसरे धर्म में धर्मांतरण के कारण, वह / उसके पूर्वज रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों और अन्य लक्षणों का पालन नहीं कर रहे हैं, जिनका पालन जनजाति के सदस्यों द्वारा किया जाना आवश्यक है और यहां तक कि उत्तराधिकार, विरासत, विवाह आदि के प्रथागत कानूनों का पालन नहीं कर रहे है, तो उसे जनजाति का सदस्य नहीं माना जा सकता। किसी जनजाति के प्रथागत कानून न केवल उसकी संस्कृति को नियंत्रित करते हैं, बल्कि उत्तराधिकार, विरासत, विवाह, देवताओं की पूजा आदि को भी नियंत्रित करते हैं। विभिन्न जनजातियों की विशेषताएं इस तथ्य के बावजूद, कि वे लंबे समय से एक ही क्षेत्र में रह रहे हैं, अलग-अलग हैं। वे निर्विवाद रूप से विभिन्न देवताओं का अनुसरण करते हैं। उनकी अलग-अलग संस्कृतियां हैं। इनके रीति-रिवाज भी अलग होते हैं।

वर्तमान मामले में, प्रतिवादी के अनुसार, पीड़ित परिवार ने दो शताब्दी पहले ईसाई धर्म अपना लिया था। न्यायालय ने जनजाति द्वारा पालन की जाने वाली प्रथागत आदतों और परंपराओं पर जोर दिया और अपीलकर्ता के तर्क की पुष्टि की कि कोई व्यक्ति धर्मांतरण के बाद भी अपने जनजाति का सदस्य रहता है। सीएम अरुमुगम बनाम एस राजगोपाल में निर्धारित जाति की परिभाषा का उल्लेख करते हुए, न्यायालय द्वारा धर्म से परे नियमों और विनियमों द्वारा शासित, सामाजिक संयोजन के रूप में जाति की अवधारणा को बरकरार रखा गया। इसलिए, न्यायालय ने माना कि कानून इंगित करता है कि किसी व्यक्ति के धर्म में बदलाव का मतलब यह नहीं है कि वह अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है और मुद्दा प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों पर निर्भर करता है।

**निष्कर्ष:**

न्यायालय ने अपील के तहत आदेश को रद्द कर दिया और इसे कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए सत्र न्यायालय, पलक्कड़ को भेज दिया। इसलिए, अपील की अनुमति दी गई थी।

# 

## आशाबाई मछींद्र अधागले बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य। (2009)

## 3 एससीसी 789

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

अपीलकर्ता ने यहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 के तहत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज की, जिसमें प्रतिवादी के खिलाफ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3 (1) (xi) के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया। उसके बाद आरोपी द्वारा बॉम्बे उच्च न्यायालय में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर की गई। याचिका में दावा किया गया कि एफआईआर में आरोपी की जाति का उल्लेख नहीं है, जिसके कारण कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकी और यह रद्द किए जाने योग्य है।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

बॉम्बे उच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रतिवादी की याचिका को अनुमति दी थी और इसके खिलाफ, वर्तमान याचिका अपीलकर्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई थी।

**मुद्दा**:

क्या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1) के तहत शिकायत दर्ज करते समय अभियुक्त की जाति का उल्लेख करना आवश्यक है?

**नियम:**

(i) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

* धारा .3(1)(xi) हमले के लिए सजा से संबंधित है और कहता है:

जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए किसी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसका शील भंग करने के आशय से उस पर हमला करेगा या बल प्रयोग करेगा, वह कारावास से, जो छह मास से कम नहीं होगी किंतु जो पाँच वर्ष तक का हो सकेगी, और जुर्माने से दंडनीय होगा।

(iii) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

* Cr.P.C की धारा.482 उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों से संबंधित है और कहती है:

"इस संहिता की कोई बात, उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को ऐसे आदेश देने के लिए सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो।

**विश्लेषण:**

अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि उसके खिलाफ अपराध उसकी जाति की स्थिति के कारण किया गया था और सबूत के रूप में यह साबित करने की जिम्मेदारी कि आरोपी उच्च जाति का नहीं था,, आरोपी पर था। आगे यह तर्क दिया गया कि एफआईआर ने अधिनियम की धारा 3 (1) (xi) को लागू करके जाति का अप्रत्यक्ष संदर्भ दिया था। फिर भी, एफआईआर में जाति का उल्लेख न करने को कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं माना जा सकता है क्योंकि एफआईआर में सारी घटना का विस्तार से विवरण नहीं होता है और अपराध के मूल तत्वों को स्पष्ट रूप से शामिल किया जाता है।

दूसरी ओर, प्रतिवादी ने तर्क दिया कि चूंकि धारा 3 (1) (xi) में यह उल्लिखित है कि अपराध किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है और जब तक इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया जाता, तब तक प्रावधान के तहत अपराध नहीं बनाया जा सकता है।

अदालत ने एक एफआईआर में शामिल की जाने वाली सामग्री के दायरे को स्पष्ट करते हुए प्रारंभ किया और पुलिस अधीक्षक और सीबीआई बनाम तपन कुमार सिंह मामले पर विश्वास जताया, जहां यह माना गया था कि एफआईआर एक विश्वकोश नहीं है जो अपराध से संबंधित सभी तथ्यों और विवरणों का विवरण दे । रिपोर्ट केवल एक संज्ञेय अपराध के होने को प्रकट करने के उद्देश्य से कार्य करती है और वैधता का सही परीक्षण यह है कि क्या प्रस्तुत की गई जानकारी अपराध केहोने पर संदेह करने का कोई कारण प्रदान करती है। यदि ऐसा होता है, तो पुलिस अधिकारी को सीआरपीसी की धारा 156 के तहत उसे प्रदत्त शक्ति के माध्यम से मामले की जांच करनी चाहिए।

इसके बाद न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति के दायरे और उन मामलों की श्रेणियों की जांच की जहां उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है। *हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल में*, यह नोट किया गया था कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है और न्यायालय को ठोस सिद्धांतों के आधार पर दुर्लभ मामलों में इस शक्ति का उपयोग करना चाहिए। इसका उपयोग वैध अभियोजन में बाधा डालने के लिए नहीं किया जाना चाहिए और उच्च न्यायालय को ऐसे मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां मामले के तथ्य अधूरे हैं।

कोर्ट ने कहा कि अधिकारी को मामले की जांच करनी चाहिए और मामले की जांच की प्रक्रिया के दौरान आरोपी की जाति दर्ज करनी चाहिए। यहां तक कि अगर आरोप पत्र दायर किया गया है, तो आरोप पर विचार करते समय, अभियुक्त के लिए यह अदालत के ध्यान में लाने के लिए खुला है कि वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित है और यह अधिनियम उस पर लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि धारा 3 में कहा गया है कि अपराध का अपराधी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित नहीं होना चाहिए। इसलिए, न्यायालय ने एक टिप्पणी की कि यह सवाल कि क्या आरोपी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित है, जांच के बाद के चरण में निर्धारित किया जा सकता है और एफआईआर में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों और अधिनियम की प्रयोज्यता को बाद मामले की सुनवाई करने वाले न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

विशिष्ट तथ्यों के संबंध में, न्यायालय ने इन टिप्पणियों को यह निष्कर्ष निकालने के लिए लागू किया कि एफआईआर सीआरपीसी की धारा 482 के तहत इस आधार पर रद्द करने योग्य नहीं थी कि अभियुक्त की जाति का उल्लेख नहीं किया गया था। यह प्रश्न जांच के चरण के दौरान निर्धारित किया जाना था, जिसके आधार पर मामले की सुनवाई करने वाली अदालत आरोपों को तय कर सकती है और अधिनियम को लागू कर सकती है यदि अभियुक्त अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है।

**निष्कर्ष**:

अदालत ने याचिका को स्वीकार कर लिया और कहा कि अधिनियम की धारा 3 (1) (xi) के तहत अपराध के लिए एफआईआर में आरोपी की जाति का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। धिनियम की प्रयोज्यता को खारिज करने के लिए यह प्रतिवादी के ऊपर है कि वह जांच के दौरान या आरोप तय करने के समय यह प्रस्तुत करे कि वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित है।

**नोट:** आशाबाई के तर्क को बॉम्बे हाईकोर्ट की औरंगाबाद बेंच ने *दगडू गोरख पाटिल और अन्य बनाम शिवाजी जेठिया वालवी (2013 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 275)* में निष्कर्ष पर पहुंचाया, जहां यह माना गया था कि अत्याचार अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज करने के लिए पीड़ित की जाति एक शर्त नहीं है।

## दलित मानवाधिकारों पर राष्ट्रीय अभियान बनाम भारत संघ और अन्य। (2017) 2 एससीसी 432

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

याचिकाकर्ता, जो स्वैच्छिक संगठन हैं, ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) और उसके तहत बनाए गए नियमों को लागू न किए जाने से व्यथित होकर याचिका दायर की। याचिकाकर्ताओं ने अदालत से परमादेश या कोई अन्य उपयुक्त रिट या आदेश जारी करने का अनुरोध किया, जिसमें केंद्र और राज्य सरकारों को विशेष, नोडल अधिकारियों की नियुक्ति, अत्याचार-प्रवण क्षेत्रों की पहचान, पुनर्वास पैकेज तैयार करने और लंबित मुआवजे पर स्थिति रिपोर्ट दाखिल करने के माध्यम से अधिनियम का उचित कार्यान्वयन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाए।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

वर्तमान याचिका याचिकाकर्ताओं/स्वैच्छिक संगठनों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी।

**नियम:**

(iii) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की प्रक्रिया नियमावली:

* नियम 8: पहचाने गए क्षेत्रों का सर्वेक्षण करने के लिए विशेष सेलों की स्थापना, पहचान किए गए क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था की स्थिति पर नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों को सूचित करने, जांच और तत्काल निरीक्षण के बारे में पूछताछ करने, विभिन्न अधिकारियों की जानबूझकर लापरवाही और दर्ज मामलों की स्थिति की समीक्षा करने से संबंधित है
* नियम 9 और 10: नोडल अधिकारियों और विशेष अधिकारियों की नियुक्ति से निपटना
* नियम 15(1): अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए आकस्मिक योजना का प्रावधान करता है
* नियम 16 और 17: राज्य और जिला स्तर पर अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए सतर्कता और निगरानी समितियों की स्थापना का प्रावधान

(iv) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

* धारा 21 (4) प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए सरकार के कर्तव्य को समेकित करती है और कहती है:

केन्द्रीय सरकार, इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में स्वयं और राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपायों पर एक प्रतिवेदन प्रत्येक वर्ष संसद के प्रत्येक सदन के पटल पर रखेगी।

**विश्लेषण:**

याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि उल्लिखित प्रावधानों और नियमों के आधार पर अधिनियम का कार्यान्वयन अप्रभावी रहा है और अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का पालन न करने के कारण दलित अभी भी अत्याचार से पीड़ित हैं। इसका समर्थन एनएचआरसी की रिपोर्ट से भी हुआ, जिसमें कहा गया कि कई राज्यों में पुलिस तंत्र जघन्य मामलों में भी जानबूझकर अधिनियम को लागू करने से बच रही है। याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम के उचित प्रावधानों के तहत मामलों को दर्ज न करने, आरोप-पत्र दाखिल करने में देरी, आरोपियों को गिरफ्तार नहीं करने, उच्च जोखिम वाले अपराधियों को जमानत पर रिहा करने और दलित पीड़ितों के खिलाफ झूठे और प्रतिदावे मामले दर्ज करने की लगातार समस्या पर प्रकाश डाला। उन्होंने पीड़ितों या उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को मुआवजा नहीं देने की भी शिकायत की। याचिकाकर्ताओं ने प्रस्तुत किया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की कानूनी सहायता तक पहुंच नहीं थी और अधिनियम द्वारा विचारित विभिन्न समितियां निष्क्रिय थीं।

न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए मुद्दों को स्वीकार किया और अनुसूचित जातियों और जनजातियों के व्यक्तियों के खिलाफ किए गए अत्याचारों की बढ़ती प्रवृत्ति के खिलाफ पर्याप्त उपाय प्रदान करने के रूप में अधिनियम के विधायी मूल और उद्देश्य का पता लगाया। न्यायालय ने कहा कि केंद्र और राज्य दोनों सरकारें अधिनियम और नियमों के प्रावधानों का पालन करने में केंद्र और राज्य स्तर पर संबंधित अधिकारियों की ओर से विफल रही हैं। इस प्रकार न्यायालय ने सरकार और राष्ट्रीय आयोगों को अधिनियम के उपबंधों को कड़ाई से लागू करने का निदेश दिया।

**समाप्ति:**

न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर संबंधित अधिकारियों के दोष का निष्कर्ष निकाला और उन्हें अधिनियम और उसके तहत नियमों के प्रावधानों का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। इसने याचिकाकर्ताओं को अपनी शिकायतों के निवारण के लिए संबंधित अधिकारियों और उसके बाद संबंधित उच्च न्यायालय से संपर्क करने की अनुमति दी।

## मध्य प्रदेश राज्य बनाम बब्बू राठौर और अन्य। (2020 की आपराधिक अपील संख्या 123)

(भारत का सर्वोच्च न्यायालय)

**तथ्य:**

मृतक बैसाखू बकाया राशि को लेकर प्रतिवादी बब्बू राठौर के पास गया था। दोनों नशे में थे। बैसाखू का शव बाद में बरामद किया गया और पोस्टमार्टम से साबित हुआ कि मौत अप्राकृतिक थी और गला घोंटने के कारण दम घुटने से हुई थी। प्रारंभिक जांच में पुष्टि हुई कि मृतक को आखिरी बार प्रत्यर्थियों के साथ देखा गया था। प्रत्यर्थियों पर एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) और आईपीसी की धारा 302/304, 404/34 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था।

मुकदमे के एक उन्नत चरण में, वर्तमान उत्तरदाताओं ने तर्क दिया कि जांच उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा की गई थी। यह SC/ST अधिनियम की धारा 9 को SC/ST PoA नियम, 1995 के नियम 7 के साथ पढ़ा जाता है, जिसके लिए आवश्यक है कि किसी अपराध की जाँच ऐसे कार्यालय द्वारा की जाए जो उपाधीक्षक (DSP) के पद से नीचे का न हो।

**प्रक्रियात्मक इतिहास:**

ट्रायल कोर्ट ने माना कि उक्त उल्लंघन के लिए, जांच प्राधिकरण के बिना थी और तदनुसार, एससी/एसटी पीओए अधिनियम और आईपीसी के तहत अपराधों से प्रत्यर्थियों को मुक्त किया गया। अपील मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें ट्रायल जज के आदेश की पुष्टि की गई है, जिसके तहत प्रत्यर्थियों को आईपीसी की धारा 302/34, 404/34 और एससी/एसटी (पीओए) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (वी) के तहत अपराधों से मुक्त कर दिया गया है।

**समस्या:**

क्या आईपीसी के तहत अपराध को रद्द किया जा सकता है यदि अपराध आईपीसी और एससी/एसटी पीओए दोनों के तहत हैं, लेकिन जांच एक पुलिस अधिकारी द्वारा की गई थी जो एससी/एसटी पीओए के तहत सक्षम नहीं है, लेकिन सीआरपीसी के तहत सक्षम है?

**नियम:**

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (पीओए) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (v)

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (पीओए) अधिनियम, 1989 की धारा 9 एक "अधिकारी" को एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी शक्तियों का प्रावधान करती है।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (पीओए) नियमावली, 1995 के नियम 7 में जांच अधिकारी को ऐसे अधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया है जो उपाधीक्षक के पद से नीचे का न हो।

**विश्लेषण:**

न्यायालय ने कहा कि यह स्थापित कानून है कि अधिनियम की धारा 9, नियमों के नियम 7 और सीआरपीसी की धारा 4 के प्रावधानों को जब संयुक्त रूप से पढ़ा जाता है तो यह एक अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि नियम 7 के संदर्भ में नियुक्त नहीं किए गए अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराध की जांच अवैध और अमान्य है। लेकिन जब अपराध के खिलाफ शिकायत आईपीसी और एससी/एसटी (पीओए) अधिनियम दोनों के तहत हो, तो सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार सक्षम पुलिस अधिकारी द्वारा की जा रही जांच को सक्षम पुलिस अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराध की जांच न करने के लिए रद्द नहीं किया जा सकता है। जांच के होते हुए भी भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए कार्यवाहियां उपयुक्त न्यायालय में आगे बढ़ेंगी और आरोप पत्र केवल उस अपराध का संज्ञान लेने के लिए अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराध के संबंध में स्वीकार किए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

इस मामले में, आरोपी पर आईपीसी की धारा 302/34, 404/34 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (वी) के तहत अपराधों का आरोप लगाया गया था। इस आधार पर कि डीएसपी के रैंक से नीचे के अधिकारी द्वारा जांच की गई है, हाईकोर्ट ने एससी/एसटी अधिनियम और आईपीसी दोनों के तहत अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया था।

सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट की इस टिप्पणी से इस हद तक सहमति जताई कि एससी/एसटी अधिनियम के किसी भी प्रावधान के तहत किए गए अपराधों के संदर्भ में जांच करने में उस रैंक से नीचे का अधिकारी जांच अधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है. लेकिन आईपीसी के तहत अपराधों को सीआरपीसी द्वारा नियंत्रित किया जाना जारी रहेगा और सीआरपीसी के तहत एक चार्जशीट आगे बढ़ने के योग्य है।

**निष्कर्ष:**

अदालत ने माना कि उच्च न्यायालय ने गलती की और आक्षेपित आदेश एससी/एसटीपीओए के एस 3 तक ही सीमित था। ट्रायल कोर्ट को आईपीसी के तहत मुकदमे को आगे बढ़ाने और समाप्त करने का निर्देश दिया गया था।